



Original Article

डियर जिंदगी सिनेमा: अवसाद विरुद्ध एक संघर्ष

डॉ. रुपाली प्रशांत भोसले

सहायक प्राध्यापक

महिला महाविद्यालय, कराड

Manuscript ID:

IJAAR-C130343

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 212 - 217

Submitted: 28 Jan. 2026

Revised: 07 Feb. 2026

Accepted: 10 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

डॉ. रुपाली प्रशांत भोसले

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22786112

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22786112>



Creative Commons



सार:

‘डियर जिंदगी’ हिंदी फिल्म एक महत्वपूर्ण प्रस्तुति है, जो मानसिक स्वास्थ्य विशेषतः अवसाद की समस्या को संवेदनशील और यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करती है। यह फिल्म दर्शाती है कि बचपन में हुई उपेक्षा, अलगाव और भावनात्मक असुरक्षा जैसे अनुभव व्यक्ति के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं, जो आगे चलकर युवावस्था में तनाव, अकेलापन, अस्थिर संबंध और आत्म-संशय के रूप में उभरते हैं। कथा की नायिका कायरा के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि बाहरी सफलता के बावजूद मानसिक संतुलन और आत्मस्वीकृति के बिना जीवन अधूरा रह जाता है। फिल्म का मुख्य केंद्र बिंदु मनोचिकित्सा (थेरेपी) की सकारात्मक भूमिका है। समाज में मानसिक रोगों को लेकर प्रचलित भ्रांतियों को तोड़ते हुए यह फिल्म उपचार को आत्म-सहायता और आत्म-खोज की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है। मनोवैज्ञानिक के साथ संवाद के माध्यम से कायरा अपने दमन किए गए भावों, गुस्से और भय को पहचानती है तथा उनसे जूझने का साहस विकसित करती है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि सिनेमा केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता का प्रभावी माध्यम भी है। ‘डियर जिंदगी’ मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को रेखांकित करते हुए यह संदेश देती है कि समस्याओं से पलायन नहीं, बल्कि उनका स्वीकार और समाधान ही स्वस्थ जीवन की कुंजी है। आत्मस्वीकृति, संबंधों की यथार्थ समझ और मानसिक उपचार की आवश्यकता को रेखांकित कर यह फिल्म अवसाद के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरक कथा प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्द: जिंदगी, बाल मनोविज्ञान, अवसाद, मानसिक स्वास्थ्य, थेरेपी, भावनात्मकता असुरक्षा, संबंधों की जटिलता, आत्मखोज, आत्म-स्वीकृति।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

डॉ. रुपाली प्रशांत भोसले. (2026). डियर जिंदगी सिनेमा: अवसाद विरुद्ध एक संघर्ष. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 212 - 217. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22786112>

प्रस्तावना:

साहित्य में समाजिक मुद्दों का चित्रण किया जाता है। साहित्यकार अपने आस-पास घटी घटनाओं को कल्पना का आधार देकर साहित्यिक रचना के रूप में प्रस्तुत करता है।

साहित्यकार के संदर्भ में देवेश ठाकुर का कथन है- “रचनाकार की मानसिकता का रचना की उद्देश्य परकता अथवा दृष्टि स्थापना के संदर्भ में विशेष महत्व होता है। मानसिकता व्यक्ति की वह केंद्रीय दृष्टि है जिससे व्यक्ति वस्तुओं, स्थितियों और



घटनाओं आदि का एक निश्चित तरीके से विवेचन-विश्लेषण करते हुए एक विशिष्ट निष्कर्ष तक पहुँचता है और इस निष्कर्ष के रूप में अपनी रचना दृष्टि को समाज के सम्मुख निरूपित करता है।¹ रचना का सामाजिक घटनाओं को अपनी प्रतिभा की और कल्पना की शक्ति से साहित्यिक रचना में उतार देता है। साहित्यिक रचनाएँ लिखित, मुद्रित या दृक-श्रव्य माध्यम के रूप में सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। दृक-श्रव्य माध्यमों में हिंदी सिनेमा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ. भीमराव पाटिल के अनुसार- “सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हिंदी सिनेमा ने प्रारंभ से ही प्रबोधनात्मक और परिवर्तनशील सामाजिक विचारधाराओं को सही दिशा दी है। स्वतंत्रता आंदोलन को गतिशील बनाने में सामाजिक परिवर्तन की क्रांति लाने में, शांति का संदेश देने में, स्वतंत्रता, समता और बंधुता की भावना निर्माण करने में सत्य, शिव और सुंदरम् की भावना जगाने में अहम भूमिका निभाई है। परिणाम स्वरूप सिनेमा के बलबूते पर हिंदी भाषा को आज न केवल भारतीय वरन् अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भी अपनी क्षमता दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है।”² सिनेमा में चित्रित होने वाली घटनाएँ भी सामाजिक समस्याओं का ही हिस्सा होता है। केवल माध्यम बदल जाता है। सिनेमा दृक-श्रव्य माध्यम होने के कारण समस्याओं को नजदीक से जाना जा सकता है। हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में ऐसी कई फिल्में हैं, जो सामाजिक समस्याओं को चित्रित करती हैं। जिससे समाज-सुधार भी होता है और गलत रिवाजों का विरोध भी किया जाता है। प्रा. प्रवीण तुपे के अनुसार- “भारतीय समाज में व्याप्त कई समस्या हैं- भ्रष्टाचार, आतंक, आंदोलन, बेरोजगारी, समाज के बिगड़ते हालात, भुखमरी, पानी की समस्या, नेताओं की भ्रष्ट राजनीति आदि समस्याओं

को लेकर फिल्मकारों ने अपने फिल्मों के माध्यम से समाज में वास्तविकता का चित्रण प्रस्तुत किया है।”³ सिनेमा सामाजिक समस्याओं को दर्शाने का और जागरूकता फैलाने का एक सशक्त माध्यम है। समाज में व्याप्त समस्याओं में जाति-भेद, वर्ग-संघर्ष, लिंग-भेद, महिला असुरक्षा, ग्रामीण क्षेत्र से जुड़ी समस्याएँ, महानगरीय समस्या, यातायात की समस्याएँ, भ्रष्ट राजनीति, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाल मानसिकता से जुड़ी समस्या, युवाओं की समस्या, वृद्धों की समस्या, बढ़ती जनसंख्या, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई आदि समस्याओं पर अनेक हिंदी सिनेमाओं को देखा जा सकता है।

ऐसी ही एक सामाजिक समस्या आधुनिक युग में विकराल रूप धारण कर रही है- अवसाद की समस्या। अवसाद यह एक ऐसी समस्या है जिस पर महानगरीय जीवन का प्रभाव दिखाई देता है। महानगरीय जीवन शैली के कारण व्यक्ति भौतिकता के पीछे दौड़ रहा है। जिससे मानसिक स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं ने सिर ऊपर उठा लिया है। व्यक्ति तनाव, कुंठा, अकेलापन और अवसाद से ग्रस्त दिखाई देता है। अतीत की कुछ घटनाएँ बालक के मन और मस्तिष्क पर प्रभाव करती हैं, जो युवा होने के पश्चात् भी मानसिक स्वास्थ्य पर परिणाम दर्शाती हैं। इस संदर्भ में आशारानी व्होरा का कथन है- “इन समस्याओं के प्रमुख कारण मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक ही होते हैं। जैसे तीन वर्ष की आयु से पूर्व शिशु यदि किसी कारण माँ से अलग हो जाए, तो इस भावात्मक हानि से प्रायः उसका शारीरिक, मानसिक विकास मंद गति से होता है।”⁴ बाल आयु में मन पर कोई गहरी चोट या सदमा पहुँचा हो, तो इसका असर बालक के व्यवहार में दिखाई देता है। इसी के साथ युवा होने के पश्चात् प्रस्तुत व्यक्ति में नींद की कमी, हर समय तनाव और



सफल होने के बावजूद भी वह व्यक्ति अवसाद ग्रस्त दिखाई देता है। मानवीय जीवन शारीरिक और मानसिक कार्य प्रणाली से संचालित होता है। शारीरिक स्वास्थ्य का महत्व जितना आवश्यक है, उससे कई ज्यादा जरूरी है- मानसिक स्वास्थ्य। जिसमें मस्तिष्क के विचार और मन में उत्पन्न भावनाएँ एक साथ कार्य करती है। इस संदर्भ में डॉ. रेखा श्रीवास्तव का कथन है- “मानसिक स्वास्थ्य कई महत्वपूर्ण घटकों से बना होता है, जो व्यक्ति के संपूर्ण मानसिक भावना और सामाजिक प्रभाव को संतुलित करते हैं। यह व्यक्ति की स्थिरता, आत्म-नियंत्रण और जीवन की चुनौतियों का सामना करने की क्षमता को दर्शाता है।”⁵ भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ समाज व्यवस्था में आज भी मानसिक अस्वस्थता को ‘पागल’ कहा जाता है। जिसे आधुनिक युग में भी शर्म की बात मानी जाती है। शरीर अगर बीमार हो तो डॉक्टर के पास जाना आम बात माना जाता है, फिर चाहे बीमारी कोई भी क्यों न हो परंतु मानसिक बीमारी में यह स्थिति बिल्कुल विपरीत हो जाती है। समाज को मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने के लिए प्रयास हो रहे हैं। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के तहत यह प्रयास किया जा रहे हैं। भारत में ‘नीमहंस’- बेंगलुरु और ‘केंद्रीय मनोचिकित्सा संस्था’- रांची, लोकप्रिय गोपीनाथ बोरदोलोई क्षेत्रीय मानसिक स्वास्थ्य संस्थान (LGBRIMH), तेजपुर (असम), आदि संस्थाएँ मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करती है। साथ ही मानसिक स्वास्थ्य संबंधी अनुसंधान, उपचार, सेवा और परामर्श देने का कार्य करती है।

साहित्य तथा सिनेमा के माध्यम से भी मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता फैलाने का कार्य हो रहा है। क्योंकि साहित्य मन के भावों को अभिव्यक्त करता है। पाठक साहित्य

पढ़ते वक्त सहानुभूति, प्रेम, गुस्सा आदि भावनाओं से भर जाता है। जैसे पाठक की अनुभूति होती है, उसी के अनुसार रचना पढ़ते वक्त पाठक महसूस करता है। हिंदी सिने जगत् में मानसिक समस्याओं पर फिल्में बनाने का प्रयास हुआ है। जिसमें बाल मानसिकता का अध्ययन करती फिल्म ‘तारे जमीन पर’, घरेलू हिंसा से बाल मानसिकता पर पड़े प्रभाव को दर्शाती फिल्म ‘जजमेंटल है क्या’, परीक्षा के तनाव से गुजरते युवाओं के समस्याओं को उजागर करती फिल्म ‘छिछोरे’, ‘श्री इंडियट’, ‘मुन्ना भाई एमबीबीएस’, इसी के साथ अन्य फिल्म जिनमें ‘डेथ इन द गंज’, ‘तमाशा’, ‘पार्क एवेन्यू’, ‘ब्लैक’, ‘खामोशी’ और ‘डियर जिंदगी’ जैसी फिल्में हैं। जिसमें ‘डियर जिंदगी’ फिल्म बाल मानसिक स्वास्थ्य और युवाओं की समस्याओं को उजागर करती है। रोजमर्रा के जीवन पर अतीत की घटनाओं के प्रभाव के कारण रिश्तों में दूरियाँ, तनाव, असुरक्षा की भावना आदि समस्याओं पर सिनेमा प्रकाश डालता है। ‘डियर जिंदगी’ यह सिनेमा सन् 2016 में रिलीज हुआ है। गौरी शिंदे द्वारा इसका निर्देशन किया गया है। प्रमुख पात्र के रूप में आलिया भट्ट ने ‘कायरा’ नामक लड़की की भूमिका निभाई है। मानसिक चिकित्सक यानी ‘जहांगीर खान’ की भूमिका शाहरुख खान ने निभाई है।

सिनेमा की कथावस्तु में कायरा नाम की लड़की है, जो अपने नाना-नानी के साथ रहती है। माता-पिता ने उसे बचपन में ही अपने-आप से अलग कर दिया था। जो काम के सिलसिले में उससे दूर हो जाते हैं। वह छोटी सी बच्ची अपने ननिहाल में खुश रहने लगती है किंतु स्कूल में फेल हो जाती है। तो माता-पिता को यह शर्मनाक लगता है और कायरा को वह फिर से अपने साथ ले जाते हैं। कायरा नाम की वह छोटी बच्ची जिसने अपने बाल आयु में समझौता कर लिया था, अपने माता-पिता से अलग रहने का और वह खुशी-खुशी अपने



नाना-नानी के साथ मानसिक दृष्टि से जुड़ जाती है किंतु उसे वापस ले जाने पर वह अपने-आप को असुरक्षित महसूस करने लगती है। जिसका गहरा असर कायरा के मन पर हो जाता है। कायरा चाहकर भी अपनी भावनाएँ अपने माता-पिता के साथ साझा नहीं कर पाती। जिससे कायरा के मन में अपने माता-पिता के प्रति गुस्सा भरा जाता है। जो फिल्म में दिखाया गया है। अलगाव का डर, माँ का झूठ बोलना, अपने ही रिश्ते में असुरक्षितता की भावना, अपने मन के विचार जाहिर न करना, भावनाओं का दमन आदि बातें कायरा के मन पर गहरा आघात करती है। कई बार उसका मन आहत हो जाता है। युवा होने पर कायरा स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बन जाती है। जो सिनेमैटोग्राफी विदेश से सीखकर आती है। कायरा अपने काम में निपुण है, काम की बारीकियों से परिचित है। अपने सिनेमैटोग्राफर की भूमिका में काफी सफल है किंतु मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं से लड़ रही है। उसे नींद की कमी अकेलापन, अस्थिरता और जो रिश्ते हैं, उनसे अलगाव का डर हमेशा बना रहता है। बचपन में माता-पिता से दूरी के कारण वह किसी भी रिश्ते से लंबे समय तक जुड़ नहीं पाती। कायरा अपने-आप को अकेला समझती है। इस संदर्भ में डॉ. राजकुमार का कथन है- “एकाकीपन में एक ऐसा असामाजिक या असामान्य व्यवहार होता है, जिससे पीड़ित व्यक्ति समाज व परिवार से अलग-थलग, एकांतवासी एवं आत्मकेंद्रित हो जाता है।”⁶ कायरा के मन में असुरक्षा की भावना हमेशा बनी रहती है, जो उसके अपने जीवनसाथी के चुनाव के फैसले पर भी प्रश्नचिह्न खड़े कर देती है।

सिनेमैटोग्राफी के अंतर्गत विज्ञापन-प्रोजेक्ट के सिलसिले में वह गोवा जाती है, जहाँ उसके माता-पिता रहते हैं। वहाँ पर कायरा मानसिक चिकित्सक (मनोवैज्ञानिक) डॉक्टर

जहांगीर खान के एक कार्यक्रम को सुनती है। जिसमें उसे मानसिक स्वास्थ्य का महत्व समझ में आ जाता है। उसके मन में यह विश्वास निर्माण होता है कि यह उपचार द्वारा ठीक हो सकता है। डॉक्टर जहांगीर खान जिसका किरदार शाहरुख खान ने निभाया है। वह कार्यक्रम में शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य के भेद को स्पष्ट करते हैं। समाज में मानसिक स्वास्थ्य के बारे में क्या सोच है, इस पर बात करते हुए बताते हैं की थैरेपी यानी उपचार द्वारा मानसिक बीमारियों को ठीक किया जा सकता है। इन बातों से कायरा काफी प्रभावित होती है। थोड़ी झिझक और डर के साथ वह थैरेपी लेने का फैसला करती है। मानसिक चिकित्सा की ओर एक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए कायरा मानसिक चिकित्सक से जाकर मिलती है। डॉक्टर से बात करते समय वह अपने डर और मानसिक उलझनों से परिचित होती है। जिसमें कायरा जान जाती है कि उसकी अनकही बातें, भावनाएँ, गुस्सा आदि का बोझ उसके मन पर बना हुआ है। कायरा अपनी समस्याओं से भाग रही थी। थैरेपी लेने के पश्चात उसे पता चल जाता है की समस्याओं से भागने की बजाय उनका सामना करना जरूरी है। आत्मखोज के पश्चात् कायरा खुद को स्वीकार भी करती है, समझती है। समस्याओं का हल जब मिले तब पता चलता है कि खुद की मदद करना आवश्यक है। इस बात का मार्गदर्शन मनोवैज्ञानिक द्वारा किया जाता है। उपचार के दरमियाँ कायरा समझ जाती है कि रिश्ते में परफेक्ट कोई नहीं होता। कुछ न कुछ कमी रहती ही है। स्वभाव, परिस्थितियाँ या अन्य किसी कारण से यह होता है। तो परफेक्शन की खोज न करते हुए अपने-आप को स्वीकार करना आवश्यक है। अंत में कायरा उपचार के कारण काफी हद तक राहत महसूस करती है। अपने माता-पिता से जो दूरियाँ बनी थी उनमें भी सुधार करती है। आस-पास के अन्य रिश्ते हैं, उन रिश्तों को नए नजरिए से देखती है। खुद की अपूर्णता को



स्वीकार करते हुए संबंधों का महत्व समझ जाती है। खुद की भावनाओं को समझती है। आत्मस्वीकृति से ही उसे जीवनयापन करने में आसानी होती है।

प्रस्तुत हिंदी सिनेमा अवसाद की समस्या की ओर निर्देश करता है। साथ ही समस्याओं की जड़ तक यानी मूल कारण पर भी प्रकाश डालता है। मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सजकता के महत्व को उजागर करता है। मानसिक स्वास्थ्य मनुष्य जीवन का अत्यंत संवेदनशील पहलू है। मानसिक बीमारियों पर विचार करना आवश्यक क्यों है? आदि समस्याओं पर 'डियर जिंदगी' सिनेमा मार्गदर्शन करता है।

सिनेमा बाल मनोविज्ञान की समस्या पर ध्यान खींचता है। बाल आयु में की गई उपेक्षा, अलगाव, झूठी बातें आदि बालक के मन पर गहराई से बुरा असर करती है। अतीत में घटित घटनाओं के कारण वर्तमान और भविष्य भी प्रभावित होता है। युवा होने पर यही समस्या विकराल रूप लेती है। हर समय अलगाव, चिड़चिड़ापन, नींद की कमी और असुरक्षा की भावना आदि समस्याओं से प्रस्तुत व्यक्ति को हर समय जूझना पड़ता है। प्रस्तुत सिनेमा न केवल मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्या का चित्रण करता है बल्कि थेरेपी यानी उपचार का महत्व समझाता है। साथ ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपचार संबंधी सकारात्मक सोच निर्माण करने में भी 'डियर जिंदगी' सिनेमा ने सक्षम भूमिका निभाई है। अरुण गुप्ता का कथन है- “व्यक्ति अवसाद का शिकार तब होता है, जब वह समस्या का समाधान करने में खुद को असमर्थ पाता है। मनुष्य को अपने-आप को पूर्ण रूप से समर्थ समझ कर अपनी समस्या को सुलझाने का प्रयास करना चाहिए। अवसाद मनुष्य के अंदर स्वयं नहीं जाता अपितु परेशान होकर मनुष्य इसे ग्रहण कर लेता है। अतः अवसाद मनुष्य का ही बनाया हुआ नकारात्मक तत्व

है।”⁷ मानसिक समस्या से गुजरने वाला व्यक्ति समाज के किसी भी वर्ग, लिंग, जाति या आयु का हो सकता है। जिसके लिए उपचार का महत्व 'डियर जिंदगी' सिनेमा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उपचार के पश्चात व्यक्ति सामान्य जीवन व्यतीत करता है। जीवन के सुखमय पलों का आनंद ले सकता है। मनोवैज्ञानिक से उपचार लेने का अर्थ है, खुद की मदद करना। इससे जीवन जीने का सलीका पता चलता है। मनोवैज्ञानिक पीड़ित व्यक्ति को आत्मखोज और आत्मस्वीकृति से परिचित करवाता है।

निष्कर्ष:

'डियर जिंदगी' मानसिक स्वास्थ्य के प्रश्न को केंद्र में रखकर निर्मित एक ऐसी सशक्त फिल्म है, जो अवसाद को केवल व्यक्तिगत कमजोरी नहीं, बल्कि सामाजिक और भावनात्मक परिस्थितियों से जुड़ी जटिल प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है। यह स्पष्ट करती है कि बचपन में अनुभव की गई उपेक्षा, असुरक्षा और संवादहीनता व्यक्ति के अवचेतन में गहरे प्रभाव छोड़ती हैं, जिनका असर उसके भविष्य के संबंधों, निर्णयों और आत्मविश्वास पर दिखाई देता है। फिल्म यह संदेश देती है कि मानसिक समस्याएँ बाहरी सफलता से समाप्त नहीं होतीं। वास्तविक संतुलन तब संभव है जब व्यक्ति अपने भीतर छिपे भय, क्रोध और दबी हुई भावनाओं को स्वीकार करे। कायरता की यात्रा आत्मखोज, आत्मस्वीकृति और भावनात्मक परिपक्वता की यात्रा है, जो यह दर्शाती है कि स्वयं को समझना ही उपचार की पहली सीढ़ी है। साथ ही, यह सिनेमा मनोचिकित्सा के प्रति समाज में व्याप्त भ्रांतियों को तोड़ने का कार्य करता है। थेरेपी को सहज, मानवीय और सहयोगात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत कर फिल्म यह स्थापित करती है कि



सहायता लेना कमजोरी नहीं, बल्कि साहस का परिचायक है। मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, संवाद और स्वीकृति ही स्वस्थ जीवन का आधार हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'डियर जिंदगी' अवसाद के विरुद्ध संघर्ष की एक प्रेरणादायी सिनेमा अभिव्यक्ति है, जो दर्शकों को समस्याओं से पलायन के बजाय उनका सामना करने, संबंधों को नए दृष्टिकोण से समझने और स्वयं के प्रति संवेदनशील बनने की प्रेरणा देती है। यह फिल्म मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को रेखांकित करते हुए समाज में सकारात्मक सोच के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. 'साहित्य की सामाजिक भूमिका', देवेश ठाकुर, संकल्प प्रकाशन मुंबई, द्वितीय संस्करण 1992, पृ. क्र. 32

2. 'साहित्य, समाज और हिंदी सिनेमा', डॉ. भीमराव पाटिल, शुभम पब्लिकेशंस- कानपुर, प्रथम संस्करण 2015, पृ. क्र. 27
3. 'समाज माध्यमों में हिंदी की भूमिका'- प्रवीण तुपे, इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ISSN- 2350-0905, पृ. क्र. 100
4. 'मानसिक स्वास्थ्य और मनःचिकित्सा', आशारानी व्होरा, किताब घर प्रकाशन, पृ. क्र. 98
5. 'अमृत काल में भारत और मीडिया', डॉ. रेखा श्रीवास्तव, पार्थ प्रकाशन देहरादून, प्रथम संस्करण 2025, पृ. क्र. 201
6. 'मनोभाषिकी के सिद्धांत और हिंदी साहित्य', डॉ. राजकुमार, कल्पना प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. क्र. 236
7. 'सफल और सुखी जीवन के सूत्र', अरुण गुप्ता, ब्लू रोज प्रकाशन- नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2024, पृ. क्र. 84